



## भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में काव्य-भाषा की शक्ति : व्यंजना

भाषा की अभिव्यक्ति का माध्यम है - 'शब्द' और शब्द के उच्चारण मात्र से जिसकी प्रतीति होती है वह है - 'अर्थ'। अर्थात् शब्दार्थ के माध्यम से भाषा में निहित प्रतीयमान अर्थ को जाना जा सकता है। भारतीय काव्यशास्त्र में शब्दार्थ के प्रतीयमान अर्थ को जानने या समझने को व्यंजना अथवा ध्वनि की संज्ञा दी गई है। आनंदवर्धन ने इसका सम्पूर्ण विवेचन ध्वनि-सिद्धांत के अंतर्गत किया है। आनंदवर्धन ने ध्वनि को परिभाषित करते हुए 'ध्वन्यालोक' में लिखा है कि

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थो ।

व्यङ्कतः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः॥<sup>1</sup>

अर्थात् जहाँ अर्थ स्वयं को तथा शब्द अभिधेय अर्थ को गौण करके प्रतीयमान अर्थ को प्रकाशित करता है उस काव्य विशेष को ध्वनि-काव्य कहा गया है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि ध्वनि में व्यंग्यार्थ अथवा प्रतीयमान अर्थ का वाच्यार्थ से अधिक महत्व होना चाहिए।

व्यंग्यार्थ का संबंध काव्यशास्त्र में उल्लेखित शब्द-शक्ति के व्यंजना-व्यापार से हैं। व्यंग्य का अर्थ-बोध जिस शब्द से होता है वह उस अर्थ का व्यंजक होता है और उस अर्थ तथा उस शब्द में व्यंग्य-व्यंजक का संबंध होता है और जिस शब्द-शक्ति से इस संबंध का ज्ञान होता है वह है व्यंजना-व्यापार।

आनंदवर्धन ने व्यंजना को ध्वनि का आधारभूत तत्व माना है और व्यंजना के मूल में अभिधा और लक्षणा दोनों शब्द-शक्तियों को भी माना है। आचार्य मम्मट ने भी व्यंजना-व्यापार को अभिधा और लक्षणा शब्द-शक्ति पर अवलंबित माना है। उनका मानना है कि व्यंजना तब तक प्रवृत्ति में नहीं आती जब तक अभिधा और लक्षणा की शक्तियाँ अपना कार्य करके निवृत्ति को स्वीकार नहीं कर लेती। पंडित विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' कृति में व्यंजना-व्यापार को परिभाषित करते हुए लिखा है कि

विरतास्वभिधाद्यासु ययाडर्थो बोध्यते परः।

सा वृत्तिव्यंजना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च॥<sup>2</sup>

अर्थात् अभिधा तथा लक्षणा की शक्तियाँ अपना-अपना कार्य करके जब उपक्षीण हो जाती हैं तब जिसके द्वारा अधिक अर्थ की प्रतीति होती है वह वृत्ति व्यंजना है।

व्यंजना-व्यापार की विशेषता है कि यह केवल काव्य रचना में ही निहित होता है। शास्त्रों में व्यंजना-व्यापार का प्रयोग नहीं होता है। आचार्य मम्मट ने भी काव्य-भाषा की शक्ति के रूप में व्यंजना-व्यापार को प्रतिष्ठित करते हुए लिखा है कि 'स्याद् वाचको लाक्षणिकः शब्दोऽत्रव्यंजकस्त्रिधा।' मम्मट ने यह भी प्रतिपादित किया है कि 'शास्त्रे व्यंजकः शब्दो न प्रसिद्ध इत्यत उक्तमत्रेति।' अर्थात् शास्त्र में व्यंजक शब्द प्रसिद्ध नहीं है। भट्ट नायक ने भी इस बात का समर्थन करते हुए लिखा है कि शब्द के प्राधान्य का आश्रयण करके शास्त्र को अलग मानते हैं अर्थ तत्व से युक्त को आख्यान कहते हैं और इन दोनों के गुणीभूत होने की स्थिति में व्यापार का प्राधान्य होने पर काव्य की धी होती है।<sup>3</sup>

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि काव्य में अभिधा और लक्षणा व्यापारों के अलावा व्यंजना-व्यापार का भी प्रयोग होता है और यह व्यंजना-व्यापार अन्यत्र कहीं नहीं सिर्फ काव्य में ही होता है। शास्त्र

के कोई भी क्षेत्र में व्यंजना-व्यापार का प्रयोग नहीं होता है। इस प्रकार काव्य की रचना के लिए भाषा की जिस शक्ति की जरूरत होती है वह व्यंजना है।

पाश्चात्य समीक्षकों ने भी जाने-अनजाने में काव्य की रचना के लिए प्रयुक्त भाषा में व्यंजना-व्यापार को ही महत्व दिया है।

अरस्तू ने काव्य-भाषा की अभिव्यक्ति के लिए नवनिर्मित और अपरिचित शब्दों की बात की हैं। अरस्तू मानते हैं कि अपरिचित शब्दों के प्रयोग से काव्य रसमय हो जाता है। यह अपरिचित शब्द विचित्र या लोकोत्तर होते हैं और शब्दों की यह विचित्रता ही आनंद का मूल स्रोत होता है।

भारतीय सिद्धांत में 'विचित्रता' शब्द 'वक्रता' का बोधक है। कुंतक ने वक्रता सिद्धांत प्रतिपादित करते हुए कहा है कि सामान्य मनुष्य अपने भावों को अभिव्यक्त करने के लिए जिन मार्ग को अपनाता है उससे भिन्न रचनाकार अपने भावों को अभिव्यक्त करने के लिए विचित्रता या वक्रता का आश्रय लेता है। कुंतक की वक्रता को प्रतीयमानपरक ही समझना चाहिए अर्थात् इसे प्रकारांतर से ध्वनि का ही लक्षण समझना चाहिए। विचित्रता चमत्कार पैदा करती है, प्रतीयमान से असंस्पृक्त रहकर कोई भी अर्थ चमत्कार का वहन नहीं कर सकता। अभिनव गुप्त ने इस वक्रता को लोकोत्तर (अर्थात् प्रसिद्ध से पृथक) ही कहा है। अर्थात् अरस्तू ने जिन नव-निर्मित एवं अपरिचित शब्दों की बात की है उसे भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा में वक्रोक्ति सिद्धांत के अंतर्गत वक्रता, विचित्रता या विलक्षणता के रूप में देखा गया है।

लॉजाइनस ने काव्य-भाषा के वैशिष्ट्य और चरम उत्कर्ष को ही उदात्त माना है। औदात्य का आविर्भाव शब्द-साधारण से विलक्षण होता है। वह श्रोताओं के मस्तिष्क को अनुकूल तथा ऋजु ही नहीं बनाती वरन् प्रत्युय उसे आह्लाद-मग्न कर देती है। भाषा का यह विशिष्ट प्रभाव श्रोताओं पर अनुनयन के रूप में होकर आत्मातिक्रमण के रूप में होता है। अतः गरिमामय भाषा ही काव्य भाषा है जो सामान्य भाषा से पृथक होती है। लॉजाइनस का काव्य-भाषा संबंधित यह विचार रस निरूपण में भट्ट नायक के रस संबंधी विचार से जोड़ा जा सकता है। भट्ट नायक ने रस की आत्म-परक व्याख्या की है। उनके अनुसार रस की स्थिति वस्तुपरक न होकर आत्म-केन्द्रित होती है जिससे रसास्वाद होने पर व्यक्ति आनंदविभोर हो उठता है। भारतीय काव्यशास्त्र में अभिनव गुप्त ने रसास्वाद की प्रक्रिया में रस को भावकत्व व्यापार न मानते हुए उसे व्यंजना-व्यापार माना और बताया कि व्यंजना के अलौकिक व्यापार से रस आस्वाद बनता है। इस प्रकार अभिनव गुप्त काव्य में व्यंजना-व्यापार से ही रस की अभिव्यक्ति मानते हैं।

दाँते ने तत्कालीन इटालीयन भाषा की विभिन्न बोलियों में से सबसे परिष्कृत और विकसित बोली को काव्य-भाषा के रूप में महत्व दिया था। दाँते तत्कालीन काव्य-भाषा को विभिन्न श्रेणियों में विभक्त करते हुए कांतियुक्त शब्दों से युक्त भाषा को ही साहित्य के लिए उपयुक्त मानते हैं। वे काव्य-भाषा के चार गुणों की चर्चा करते हैं - लोच (Illusteous), कांति (Illusture), वकालत की भाषा (Aulicum) और दरबारीपन (Curiale). इसमें जो कांति है वही भारतीय काव्यशास्त्र का व्यंग्यार्थ है। रचना में कांति व्यंजना के फलस्वरूप ही आती है। कांति का यह व्यंग्यार्थ आनंदवर्धन द्वारा प्रस्तुत प्रतीयमान अर्थ को 'लावण्य' के समान कवियों की वाणी में भाषित होता है।

आई. ए. रिचर्ड्स ने काव्य-भाषा के लिए संवेगात्मक भाषा पर बल दिया है। संवेगात्मक भाषा से मनुष्य की संवेदनाओं को अभिव्यक्ति मिलती है और इसीलिए काव्य में भावनों को अभिव्यक्ति मिलती है। आई. ए. रिचर्ड्स के काव्य भाषा संबंधी विचार को चार दृष्टियों के में विभाजित करके देखा जा सकता है - 1. वाच्यार्थ (सेन्स) 2. अनुभूति (फीलिंग) 3. स्वर-भंगिमा (टोन) 4. अभिप्राय (इंटेंशन).

रिचर्ड्स द्वारा निर्दिष्ट चारों अर्थों में से वाच्यार्थ (सेन्स) का संबंध तो भाषा के 'तथ्यबोधक' प्रयोग से है और शेष तीन अनुभूति (फीलिंग), स्वर-भंगिमा (टोन), अभिप्राय (इंटेंशन) भाषा के 'भाव-प्रवर्तक' प्रयोग के अंतर्गत आते हैं। यह दोनों भाषा प्रयोग क्रमशः अभिधा और व्यंजना के पर्याय माने जा सकते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने अध्ययन से यह रेखांकित किया है कि भाषा की व्यंजना शक्ति का आधार भाव-प्रवर्तन की क्षमता है। काव्य में इसी लिए व्यंजक शब्द का महत्व स्वीकार किया जाता है क्योंकि, काव्य में मुख्य प्रयोजन तथ्यबोध नहीं, बल्कि भाव-प्रकाशन होता है। इस प्रकार भाव प्रवर्तक भाषा स्वभावतः व्यंजक होती है।<sup>4</sup>

रिचर्ड्स की संवेगात्मक भाषा को भारतीय काव्यशास्त्र की रसध्वनि के साथ जोड़ा जा सकता है। काव्य-भाषा की सार्थकता किसी भावना को तीव्र या बढ़े-चढ़े रूप में व्यंजित करने में है और यह भाव-व्यंजकता ही भाषा को व्यंजना अथवा ध्वनि-शक्ति से संवलित करती है। रिचर्ड्स इसी को संवेगात्मक भाषा अथवा भाषा का संवेगात्मक प्रयोग कहते हैं और आनंदवर्धन तथा अभिनव गुप्त इसे रस ध्वनि कहते हैं।<sup>5</sup>

मनुष्य अपने अनुभव, भावना, संवेदना, रस-रुची आदि को भाषा के माध्यम से व्यक्त करता है। इन सबसे ही काव्य का सृजन होता है। लेखक या वक्ता काव्य के अभिधेय अर्थ को सहृदय सामाजिक तक संप्रेषित करने के लिए कल्पना, बिंब, फैंटेसी, मिथक आदि काव्य के उपकरण एवं तकनीक को उपयोग में लाता है। क्योंकि इनके प्रयोग से काव्य में अर्थ की व्यंजना की जा सकती है और अर्थ की व्यंजना किए बिना अर्थ की प्रतीति स्पष्ट रूप से नहीं हो सकती। कल्पना, बिंब, फैंटेसी, मिथक आदि में व्यवहारिक भाषा की अपेक्षा व्यंजना शक्ति ज्यादा रहती है। यही कारण है कि काव्य सृजन के लिए भाषा की शक्ति व्यंजना को स्वीकार किया गया है।

कुल मिलाकर यह स्पष्ट होता है कि काव्य में किसी न किसी रूप में व्यंजना की उपस्थिति रहती ही है। भारतीय काव्यशास्त्र में ध्वनि सिद्धांत से पूर्व भी व्यंजना-वृत्ति को किसी-न-किसी रूप में दर्शाया गया है। ध्वनि सिद्धांत में व्यंजना पर विशद विचार-चर्चा की गई है और इसे स्थापित करने का श्रेय ध्वनिवादी आनंदवर्धन को दिया गया है। इसी प्रकार पाश्चात्य साहित्य में अरस्तू, लॉजार्डनस, दाँते, रिचर्ड्स के काव्य-भाषा संबंधी विचारों में प्रकारांतर से व्यंजना का स्पष्ट नाम न लेते हुए व्यंजना-व्यापार पर विचार-विवेचन मिलता है। इसका एक व्यवस्थित रूप बहुत बाद में वीट, आयरनी, एम्बिग्विटी जैसे रूपों में सामने आता है।

दूसरा, भारतीय काव्यशास्त्र में व्यंजना, एक काव्य-भाषा के रूप में प्रयुक्त होती रही है जो हिन्दी साहित्य में एक शैली के रूप में और अब वह 'व्यंग्य' संज्ञा से हिन्दी की साहित्यिक विधा के रूप प्रस्तुत हो रही है। इसी प्रकार पाश्चात्य साहित्य में यह 'सटायर' के रूप में प्रसिद्ध हुई है। आज व्यंग्य का अद्यतन प्रयोग जिस अर्थ में किया जात है, उसमें संस्कृत की व्यंजना-शक्ति के साथ-साथ अंग्रेजी का सटायर अर्थ भी समाविष्ट है।

## संदर्भ

- I. आनंदवर्धन. ध्वन्यालोक. 1/13 [https://sa.wikisource.org/wiki/ध्वन्यालोक:/उद्द्योत:\\_1](https://sa.wikisource.org/wiki/ध्वन्यालोक:/उद्द्योत:_1)
- II. पं. विश्वनाथ. साहित्यदर्पण. 2/12 पृ 50
- III. निर्मला जैन. रस सिद्धांत और सौंदर्यशास्त्र. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 1999. पृ. 357
- IV. निर्मला जैन. रस सिद्धांत और सौंदर्यशास्त्र. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 1999. पृ. 365
- V. निर्मला जैन. रस सिद्धांत और सौंदर्यशास्त्र. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 1999. पृ. 366

\*\*\*\*\*

**डॉ. तृप्ति भावसार**

सहायक आचार्य

हिन्दी विभाग

एम. पी. शाह आर्ट्स एण्ड सायन्स कॉलेज

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय

Copyright © 2012 - 2017 KCG. All Rights Reserved. | Powered By: Knowledge Consortium of Gujarat